P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-4* (Part-1) December- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

राजस्थानी चित्रकला में मेवाड़ी–कलम का स्थान एक अध्ययन

अर्चना सक्सेना
असिस्टेंट प्रोफेसर,
चित्रकला विभाग,
कन्या महाविद्यालय,
आर्य समाज भूड़, बरेली

सारांश

भारतीय–कला जीवन के प्रत्येक क्षण का प्रतिबिम्ब है। जीवन के शाश्वत् मूल्यों को स्थापित किए हुए कला निरन्तर प्रवाहित होती रही है। भारतीय कलाकार चित्रों में ऐसी सृष्टि की रचना करता है, जहाँ जीवन का प्रकाशन आनन्द के धरातल पर किया गया है। यह आनन्द बोध चित्रकार का सम्पूर्ण जगत से तारतम्य स्थापित करने का ही परिणाम है, वह न केवल मूर्त रूपों एवं लौकिकता से स्वयं को जोड़ता है, अपितु अमूर्तता एवं पारलौकिक सत्ता को भी स्वीकार कर उन्हें स्वरूप प्रदान करता है। भारतीय चित्रकार ने सृजनात्मक पक्ष को अधिक महत्व प्रदान कर भारतीय संस्कृति के अधीन कलात्मक निष्ठा एवं अथक साधना का जो परिचय दिया है, वह निश्चय ही अद्वितीय है।

भिन्न–भिन्न प्रान्तों एवं राज्यों में विभिन्न विशेषताओं के साथ जन्मी चित्रकला मूलरूप में भारतीय चित्रोपम् पर मर्यादाओं का ही सुदृढ़ धरातल है, जिस पर खड़े होकर स्थानीय शैलियाँ–उपशैलियाँ अपने विहंगम स्वरूप को सम्बर्दित करती है। भारतीय लघु–चित्रणशैली के विकास में मध्यकालीन कलाओं का योगदान अक्षुण्ण रहा है, इनमें मुख्य रूप से राजस्थान की चित्रशैली निरन्तर अबाधगति से पुष्पित एवं पल्लवित होती रही है।

मुख्य शब्द : राजस्थानी चित्रकला, परिदृश्य, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि।

प्रस्तावना

राजस्थान के इतिहास में 5वीं–6ठी शताब्दी का काल इसे भारतीय ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है। भारत के प्रमुख योद्धावंश ''राजपूत'' के रूप में जाने गए। ये राजपूत वंशज स्वदेशी थे अथवा अन्य क्षेत्रों से आकर यहाँ बस गए थे, इस तथ्य पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं, किन्तु राष्ट्रप्रेम की दृष्टि से राजपूत स्वयं को पूर्णरूपेण स्वदेशी मानते हैं। राजपूत जाति मध्य एशिया की विभिन्न जातियों की उत्तराधिकारिणी के रूप में अस्तित्व में आई तथा यह एकमात्र ऐसी प्रतिरक्षक जाति थी, जिसने मुसलमान आक्रमणकारियों के विरूद्ध युद्ध को प्रारम्भ किया। इस दृष्टि से राजपूत जाति वीरता एवं शौर्य के कारण सम्पूर्ण विश्व में एक उच्च एवं पृथक स्थान प्राप्त करती है।

भारतीय परिदृश्य में राजस्थान क्षेत्र की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन समय से यह क्षेत्र देश की समृद्ध इकाईयों का अंग था, जिसमें अन्तर्वेद, सौवीर, मस्कान्तार, लाट एवं गुर्जर आदि भू–भागों की सीमाएँ सम्मिलित थीं।[1] अंग्रेजों ने अन्य देशी रियासतों को मान्यता देकर इसका नाम राजपूताना रख दिया और स्वतंत्रता के बाद विलय प्रक्रियाओं के अन्तर्गत इसका नामकरण हर्षकालीन व्यवस्था के आधार पर ''राजस्थान'' कर दिया गया।[2]

राजपूत सदैव से ही अपने शौर्य पराक्रम के कारण विश्व–विख्यात है। यहाँ के शासकों ने युद्धक्षेत्र में तो अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा का प्रयोग किया ही, साथ ही सांस्कृतिक दृष्टि से भी भारतीय सभ्यता को सम्पूर्ण विश्व में एक नवीन स्वरूप प्रदान किया। यहाँ के राजपूतों ने सांस्कृतिक एवं कलात्मक कार्यों के प्रति अपनी गहरी रूचि प्रदर्शित कर भारतीय सांस्कृतिक परिवेश को एक दृढ आधार प्रदान किया है, अतः राजपूत चित्रशैली विशिष्ट–कलात्मक गुणों से युक्त कलाक्षेत्र में एक आन्दोलन के रूप में सर्वविदित है, जिसने सम्पूर्ण भारतीय सांस्कृतिक परिवेश को चित्रात्मक आधार प्रदान कर एक नवीन दिशा की ओर उन्मुख किया है।

राजस्थान की चित्रशैली विविधताओं से युक्त है। यहाँ की शौर्य गाथाओं, महाराणाओं की महत्त्वाकांक्षाओं, मधुरतम स्वप्नों एवं हर्ष–विषाद आदि

मनोभावों का चित्रण चित्रकार की तूलिका से सृजित हुआ है, जिसके फलस्वरूप जीवन के सुखमय–क्षण, स्नेह एवं संयोग–वियोग जैसी ममस्पर्शी भावनाएं सदैव के लिए राजस्थान क्षेत्र की जीवन–शैली को अमरता प्रदान करती है। इस प्रकार राजस्थानी चित्रकला वहाँ के कला प्रेमियों के अथक प्रयत्नों का ही प्रतिफल है, जिन्होंने यहाँ की कला के उन्नयन और विकास में महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

राजस्थान शब्द उच्चारित होते ही जो छवि मन–मस्तिष्क में उभरती है, उसमें पद्धमिनी का जौहर, प्रताप की हल्दीघाटी, पन्ना का त्याग, आन–बान–शान पर मर–मिटने वाले रणबांकुरे, चित्तौड़, रणथम्भौर के भीमकाय किले और दूर–दूर तक फैला हुआ थार का मरूस्थल ही दिखाई पड़ता है, पर राजस्थान का एक रूप और भी है, एकदम शान्त, मोहक, कलात्मक, श्रृंगारिक एवं लावण्यमयी, वही है चित्रकला का आधार[3]। राजस्थानी चित्रकला का अपना एक ऐतिहासिक सांस्कृतिक एवं कलात्मक महत्त्व है तथा अपने में कई शैलियाँ समेटे इस चित्रकला में मेवाड़ कलम का अपना गौरवमयी इतिहास है। मेवाड़ी कलम अपने बाह्य एवं आंतरिक गुणों से सम्पन्न श्रेष्ठतम् उपशैलियों में से एक है तथा अपनी मौलिक विशेषताओं के कारण राजस्थानी चित्रकला में अपना एक अलग स्थान रखती है।

ऐतिहासिक शौर्य एवं प्राकृतिक सौन्दर्य से विभूषित मेवाड़ राजस्थानी चित्रकला के विकास में अभूतपूर्व योगदान देने वाला राज्य था।[4] पोथी–चित्रण परम्परा में राजस्थानी चित्रकला का जो स्वरूप उभरकर आया, उसकी कलास्थली मुख्य रूप से मेवाड़ ही मानी जाती रही है। आहड़, नागदा, देलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, चावंड एवं कुम्भगढ़ आदि मेवाड़ की कला के तीर्थस्थल रहे हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण राजस्थान एवं पश्चिमी भारत को समय–समय पर प्रभावित किया।[5] मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ तत्पश्चात् उदयपुर सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण थी, जहाँ स्थापत्य कला तथा चित्रकला को सर्वाधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।[6] चित्तौड़ और उदयपुर के शिशोदिया नरेशों के समय इस शैली का उदय हुआ। इस शैली के सर्वप्रथम प्राप्त ज्ञान चित्रों में सुपासनाहचर्यम् की चित्रित प्रति है। जिस पर 1423 ई0 की तिथि अंकित है। इन चित्रों पर पश्चिम भारतीय शैली के चित्रों की छाप है। 1605 ई0 में चावड़ के चित्रकार ''निसारदीन'' ने रागमाला सीरीज चित्रित की, जिन पर 'चौरपंचाशिका', गीत–गोविन्द एवं भागवतपुराण की ही तरह कुलहदार टोपी चाकदार जामा तथा पारदर्शी वस्त्रों के दर्शन होते ह[7] जिससे राजस्थान की अन्य उपशैलियाँ भी प्रभावित हुई तथा यहाँ की विशेषताओं को ग्रहण किया। मेवाड़ चित्रशैली राजस्थान की प्रारम्भिक चित्रशैली के रूप में जानी जाती है। विभिन्न तथ्यों के आधार पर भी राजस्थानी चित्रकला की जन्मभूमि का केन्द्र मूलतः मेवाड़ क्षेत्र है।[8] वास्तव में राजस्थानी चित्रशैली अपभ्रंश शैली का ही परिष्कृत रूप है। इस प्रकार 9वीं एवं 10वीं शताब्दी में चित्रकला में जो अवनति होती जा रही थी, उसके स्थान पर 15वीं शताब्दी में उन्नति का क्रम चल पड़ा। यह पुनर्रूत्थान गुजरात और दक्षिणी राजस्थान मेवाड़ में हुआ जान पड़ता है।[9]

मेवाड़ का राजसी जीवन भी यहाँ की चित्रकला के उत्थान में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यहाँ के महाराणाओं में राणा कुम्भा का शासनकाल सांस्कृतिक उत्थान की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है। कलाओं के क्षेत्र में यह समय स्वर्णिम माना जाता है। मेवाड़ के ही अन्य शासकों में 'राणा अमरसिंह', 'राणा संग्राम सिंह' तथा 'राणा अरिसिंह' के काल में चित्रकला का सर्वोपरि विकास हुआ। राणा संग्रामसिंह बल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इन्होंने कृष्ण को सर्वोच्च सत्ता के रूप में अपना आराध्य देव माना, अतः कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन की व्याख्या साहित्य एवं कला के माध्यम से रचनाकारों ने की। कवियों ने कृष्ण के जीवन को काव्यात्मक पुट प्रदान कर नवीन भक्तीमार्गी–धारा को प्रवाहित किया। चित्रकारों ने साहित्यिक रचनाओं से प्रेरणा प्राप्त कर कृष्ण की लीलाओं को अपने चित्रों का आधार बनाया, इस प्रकार कृष्ण चरित्र को चित्रतल पर प्रमुखता से उभारने में मेवाड़ शैली का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

मेवाड़ चित्रशैली में कृष्ण के अतिरिक्त ''राम'' का जीवन भी चित्रों के माध्यम से जन–जन के अधिक निकट पहुँचता है। 'आर्ष–रामायण' में वर्णित राम के जीवन के विभिन्न घटनाचक्रों को चित्र–सम्पुटों के रूप में मेवाड़ चित्रशैली में दृष्टिगत् किया जा सकता है। रामायण को मेवाड़ की क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित कर कवियों ने उसे काव्यात्मक पुट से सज्जित किया, जिससे चित्रकारों ने रामायण के चरित्रों को अधिक सहज रूप में चित्रित किया। अन्य पौराणिक चरित्रों में प्रारम्भिक एवं लोकमिश्रित परम्परागत् स्वरूप को रूपायित करने का श्रेय भी मेवाड़ क्षेत्र की चित्रकला को ही जाता है।

इस प्रकार मेवाड़ की चित्रकला ने सम्पूर्ण राजस्थान की अन्य परवर्ती चित्रशैलियों को एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया। मेवाड़ की क्षेत्रीय उपशैलियाँ भी कलात्मक विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। ये स्थानीय रियासतें समय–समय पर जागीरों के रूप में राणा–महाराणाओं के मंत्रियों तथा भाई–बन्धुओं को उपहार स्वरूप प्रदान की जाती थीं।[10] अतः इन ठिकाणों पर भी निजी कला को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। मेवाड़ क्षेत्र के इन ठिकानों में देवगढ़, शाहपुरा, प्रतापगढ़ एवं नाथद्वारा आदि का प्रमुख स्थान है, जहाँ चित्रकारों ने स्थानीय जीवनशैली के अनुरूप चित्रों का सृजन किया।

शैलीगत् दृष्टि से मेवाड़ शैली के चित्र विभिन्न आन्तरिक एवं बाह्य विशेषताओं से युक्त है। रूपाकृतियों का प्रारम्भिक सादा स्वरूप साधारण होते हुए भी भावों से युक्त है। मेवाड़ के प्रारम्भिक कलात्मक स्वरूप राजस्थानी चित्रशैली के मौलिक स्वरूप हैं, जिन्हें राजस्थान की अन्य उपशैलियों ने आत्मसात् किया।[11] इसके अतिरिक्त चित्रों में प्रयुक्त रेखाओं व वर्ण आदि की विशेषताएँ भी मेवाड़ी–चित्रण–विधान को राजस्थानी चित्रकला में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

यहाँ के कलाकारों ने अपनी तूलिका से चटक रंगों के साथ नायिकाओं के सौन्दर्य, मिलन, विरह की विभिन्न स्थितियों को चित्रांकित किया है। कलाकारों ने हरी पृष्ठ–भूमि पर थिरकती हुई तूलिका से चटक–रंगों के साथ उभरता हुआ देवोपम् रूप–वैभव, झीने वस्त्रों में

झांकती सुन्दर अंग–प्रत्यंगों की शोभा, रंग–बिरंगी कंचुकी, कानों में झुमके, गले में हार, पैरों में पैजनी, कटि प्रदेश में करधनी, सुकुमार कलाईयों में महीन चूड़ियों से शोभित, सुकोमल शरीर, भाव तरंगित मन, तीखे नयन–नक्श के साथ नायिकाओं को विविध भाव परिस्थितियों के साथ दर्शाया है।

चित्रों में कलाकारों ने दैनिक उपयोग, उत्सव, खेल–खिलौने आदि वस्तुओं को अत्यन्त कलामय चित्रित किया है, इसके साथ ही प्रकृति के अनेक रूपाकार यथा हरी–भरी दूर तक फैली जमीन, पुष्प, पक्षी, पशु आदि को कलाकार ने अति मोहक रूप में चित्रों में अंकित किया हैं। वनस्पति से आच्छादित पृष्ठभूमि में संयोजित टीले, वृक्ष, सतरंगी–वैभव में वास्तु–चित्रण समसामयिक पद्धति के अनुसार मौलिकता के साथ संयोजित किये गए है। भवनों में बनी गोल–गुम्बद व घुमावदार–छतरियाँ, आकाश की ओर उन्मुख स्वर्ण कलश, छज्जों के नीचे झांकते वातायन, जालीदार वास्तु का प्रयोग, रेशमी लाल हरे पर्दे, कदली कुंजों के आवरण से ढके भवन सुसज्जित भित्तियाँ व चौक आदि चित्रों की अंतराल व्यवस्था को कलात्मक एवं सूक्ष्म रूप प्रदान करते हैं।

मुगल संस्कृति का प्रभाव भी सर्वप्रथम मेवाड़ी चित्रों में ही दृष्टव्य होता है। राजपूत एवं मुगल–संस्कृति के सम्मिश्रण के फलस्वरूप चित्रों का बाह्य स्वरूप परिवर्तित होता परिलक्षित होता है,[12] अतः स्थानीय लोकतत्व की सादगी एवं बाह्य संस्कृतियों का समावेश मेवाड़ी–चित्रों में स्पष्ट दृष्टिगोचर है। मेवाड़ के स्थानीय लोकजीवन, सांस्कृतिक परम्परागत् स्वरूप एवं चित्रात्मक शैलीगत् विशेषताओं ने सम्पूर्ण राजस्थान की अन्य उपचित्रशैलियों को आदर्श धरातल प्रदान किया, जिस पर खड़े होकर इन शैलियों को स्थानीय निजी विशेषताओं को उभरने में पूर्ण सहयोग मिला, अतः यह चित्रशैली अपने अतिविशिष्ट कलात्मक गुणों के कारण सम्पूर्ण राजस्थान में सांस्कृतिक उन्नयन हेतु अति सशक्त धरातल प्रदान करती है।

उद्देश्य

राजस्थानी चित्रों में मेवाड़ चित्रकला का स्थान किसी भी दृष्टि से अल्प नहीं है। ''सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'' की परकल्पना से ओत–प्रोत मेवाड़ी कलम का योगदान अद्वितीय है, चूंकि मेवाड़–शैली अनेक स्थानीय विशेषताओं को समाहित कर पल्लवित एवं पुष्पित हुई। अतः इस शैली ने समस्त रूप में विकसित होकर राजस्थान की उन्य परवर्ती चित्रशैलियों को प्रेरणा प्रदान की है। मेवाड़–चित्रशैली वास्तव में सौन्दर्य पूरित एवं लोकमंगलकारी विशेषताओं से परिपूर्ण एक सुदृढ़ स्तम्भ है। इस चित्र–शैली ने न केवल स्थानीय परम्परागत विशेषताओं को चित्राों के रूप में समाहित किया है, अपितु वाह्य प्रभावों को आत्मसात् कर चित्रण के नवीन आयामों को भी प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष

अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मेवाड़ क्षेत्र राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से अग्रणी रहा है। मेवाड़ चित्रकला का आदर्श स्वरूप राजस्थानी उपचित्रशैलियों पर ही नहीं पड़ा वरन् इसने भारतीय चित्रकला की अन्य शैलियों को भी एक नवीन अंकन भूमि प्रदान की।

संदर्भ ग्रथ सूची

1. *नीरज जयसिंह, राजस्थानी चित्रकला, पृष्ठ सं0–9*
2. *डॉ0 शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ सं0–3*
3. *डॉ0 क्षोत्रिय, शुकदेव, भारतीय चित्रकला, पृष्ठ सं0–44*
4. *गहलोत, जगदीश सिंह, मेवाड़ राज्य का इतिहास*
5. *नीरज, जयसिंह, राजस्थानी चित्रकला, पृष्ठ सं0–71*
6. *रंधावा, एम.एस., इण्डियन पेंटिंग, पृष्ठ सं0–71–72*
7. *डॉ0 क्षोत्रिय शुकदेव, भारतीय चित्रकला, पृष्ठ सं0–44*
8. *नीरज, जयसिंह, राजस्थानी चित्रकला, पृष्ठ सं0–21*
9. *दास, रायकृष्ण, भारत की चित्रकला, पृष्ठ सं0–58*
10. *नीरज, जयसिंह, राजस्थानी चित्रकला, पृष्ठ सं0–31*
11. *नीरज, जयसिंह, राजस्थानी चित्रकला, पृष्ठ सं0–30*
12. *नीरज, जयसिंह, राजस्थानी चित्रकला, पृष्ठ सं0–28*